International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(2): 276-279

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(2): 276-279
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 18-01-2022
Accepted: 22-02-2022

Dr. JR Kashyap
Associate Professor in Sanskrit
Govt. College Solan Distt., Solan,
Himachal Pradesh, India

Corresponding Author:
Dr. JR Kashyap
Associate Professor in Sanskrit
Govt. College Solan Distt., Solan,
Himachal Pradesh, India

नीतिशतक में सदाचार विषयक अवधारणाएं : विश्लेषणात्मक अध्ययन

Dr. JR Kashyap

प्रस्तावना

नीतिशतक संस्कृत नीति साहित्य का अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। शतश्लोकीय यह ग्रन्थ अपने लघु कलेवर में व्यवहारिक ज्ञान के अगणित सिद्धान्तों को समेटे हुए हैं। इस महनीय ग्रन्थ के माध्यम से प्रबुद्ध कवि एवं विख्यात वैयाकरण आचार्य भर्तृहरि के सांसारिक अनुभवों एवं सूक्ष्म निरीक्षण से उपजी एक ऐसी वैचारिक सम्पदा का प्राकट्य हुआ है जो न केवल तत्कालीन एवं वर्तमान पीढ़ियों का ही मार्गदर्शन कर रही है अपितु भावी पीढ़ियों के मार्ग को भी युगों–युगों तक प्रशस्त करती रहेगी। भर्तृहरि की अमर तूलिका से अंकित पद्यों के माध्यम से अभिव्यक्त विचार व्यवहारिकता की कसौटी पर तो खरे उतरते ही हैं साथ में पाठकों को श्रेयस् के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा भी देते हैं। समाज के सजग प्रहरी के रुप में उन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से मानवीय समाज में वर्तमान विसंगतियों की ओर भी संकेत किया साथ में उनके निराकरण के उपायों को भी सफलतापूर्वक रेखांकित किया है। नीति शतक के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भर्तृहरि का चिन्तन अत्यन्त व्यापक एवं विशाल है। उन्होंने अपने प्रातिभ चक्षुओं से अनेकविध विषयों का सूक्ष्मता से अवलोकन करते हुए उन्हें लिपिबद्ध करके अपने अध्येताओं को भर–भर कर नैतिकता का पाठ पढ़ाया है। प्रस्तुत शोध पत्र में उन महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को ही प्रस्तुत किया जा रहा है जिन्हें मानव मात्र सदाचार के अनिवार्य मापदण्डों के रुप में ग्रहण कर स्वयं का एवं समाज का कल्याण कर सकता है। उन्होंने जिन चार प्रकार के पुरुषों के चारित्रिक गुणों एवं उनके आचारगत कौशल को अनुकरणीय एवं मानक स्वरुप माना है उसे निम्न प्रकारेण प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. महापुरुषों के गुण– व्यक्ति का आचरण ही उसे महान बनाता है और भारतीय नीतिकार महान लोगों के बनाए हुए मार्ग को ही अनुकरणीय मानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने जीवन पथ पर अग्रसर होते हुए भर्तृहरि का सम्पर्क ऐसे महानुभावों से हुआ है जिनके चारित्रिक गुणों एवं सदाचरणों के समक्ष वे सादर नतमस्तक होते हुए दिखाई देते हैं। अपनी कवि सुलभ सूक्ष्म निरीक्षण कला से भर्तृहरि ने जहाँ एक ओर इन महापुरुषों के सद्गुणों का पैनी दृष्टि से समीक्षण किया है वहीं दूसरी ओर अपने लेखन कौशल से उन्हें लेखनीबद्ध करते हुए बड़ी ही सरल एवं सरस शैली में शानदार अभिव्यक्ति भी दी है। ''महाजनो येन गताः स पन्थाः'' भारतीय नीति शास्त्र के इस महनीय आदर्श को चरितार्थ करने के लिये कवि ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा एवं कल्पना शक्ति से महापुरुषों के उन अनूठे आचरणों एवं सद्गुणों का नीतिशतक के लघु कलेवर में अद्भुत संकलन किया है। वर्ण्य विषय की व्यापकता एवं हृदयग्राही अभिव्यंजना से इस छोटे से ग्रन्थ को भारतीय नीति शास्त्र में नितान्त उपयोगी ग्रन्थ होने का गौरव तो मिला ही साथ में इसमें समाज की आचारगत ऊहा पोह का स्थायी समाधान भी खोजा जा सकता है। ग्रन्थ के माध्यम से व्यक्त किये गये विचार निश्चय ही मानव मात्र के लिये पाथेय सदृश हैं और एक सुन्दर समाज की परिकल्पना करने वाले प्रत्येक मनुष्य को इन्हें अपने व्यवहारिक जीवन के अभिन्न अंग के रुप में अंगीकार करना चाहिए। भर्तृहरि के विचारों में महत्जनों का व्यवहारिक कौशल अत्यन्त उदात्त एवं उत्कृष्ट होता है। अपने व्यवहारिक जीवन में वे कभी भी अपने सिद्धान्तों से समझौता नहीं करते हैं। उनके व्यवहार में एक नैसर्गिक निरन्तरता रहती है तथा साथ ही जनसाधारण की तुलना में विलक्षणता भी। भर्तृहरि उनके अनूठे व्यवहारिक कौशल का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि दुर्जनों के समक्ष कभी करबद्ध न होना, निर्धन मित्र से याचना न करना, प्रिय एवं न्याय संगत व्यवहार करना, प्राणों का संकट उपस्थित होने पर भी निन्द्य कर्मों का आश्रय न लेना, विपन्नावस्था में भी मस्तक ऊँचा रखते हुए जीवन यापन करना तथा महापुरुषों के मार्ग का अनुसरण करना [1] आदि कृत्य अद्भुत तो हैं ही साथ में उच्चस्तरीय जीवनोपयोगी सिद्धान्तों के रुप में भी उन्हें निर्विवादरुपेण स्वीकार किया जा सकता हैं। एक ओर साधारण व्यक्ति अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए किसी के भी समक्ष दीन–हीन बन कर चाटुकारिता का चोला ओढ़ लेता है।

संकटों एवं विपत्तियों से घिर जाने पर उसे उचितानुचित की सुध नहीं रहती है। दूसरी ओर महापुरुष जीवन में उपस्थित होने वाली हर अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में भी विवके पूर्ण सन्तुलित दृष्टिकोण अपनाते हुए अपने आचरण को उदात्त ही बनाए रहते हैं। नीतिशतककार ने उनके चरित्र में विद्यमान इस वैशिष्ट्य को तलवार की धार पर चलने के सदृश अत्यन्त कठिन एवं दुःसाध्य कहा है और यह भी कि सज्जन इस असिधारा व्रत की अनुपालना से कदापि विचलित नहीं होते हैं। इसी प्रकार गुप्तदान देना, अतिथि सत्कार करना, दूसरों की भलाई करके मौन रहना, किसी दूसरे के द्वारा किए गये उपकार को समाज में बखानना, धन पाकर गर्वित न होना आदि कृत्यों को भी असिधारा व्रत की ही संज्ञा दी गयी है और वास्तव में कोई महान आत्मा ही इन बातों को अपने जीवन में व्यवहारिक रुप दे पाता है। [2] एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि विपत्ति की अवस्था में वे कभी अपनी धैर्यशीलता का परित्याग नहीं करते, सम्पन्नता की स्थिति में वे आक्रामक होकर किसी को पीड़ित नहीं करते अपितु उनमें क्षमाशीलता का भाव विद्यमान रहता है, सभा में जाकर वे किसी प्रकार का अनर्गल प्रलाप न करके तर्कसंगत बातों को ही प्रस्तुत करते हैं, युद्ध क्षेत्र में निःसंकोच होकर अपने पराक्रम को प्रदर्शित करने का साहस रखते हैं, यशोवर्धन में वे विशेष रुची रखते हैं तथा श्रुतियों के पारायण में पूर्ण तत्परता दिखाते हैं। [3] तात्पर्य यह है कि उक्त गुण महात्माओं में नैसर्गिकरुपेण विद्यमान रहते हैं, उन्हें ये सब बातें किसी से सीखने की आवश्यकता नहीं होती है। वे आपत्काल में कदापि अपने मानसिक सन्तुलन को बिगड़ने नहीं देते हैं और दूसरी ओर ऐश्वर्यसम्पन्न होने की अवस्था में उनमें धैर्य तथा सहिष्णुता जैसे गुण अपने आप आ जाते हैं। सतत् स्वाध्याय से बौद्धिक विकास करते हुए जरामरण से अछूत यशरुपा काया के निर्माण एवं पोषण को वे जीवन के सर्वप्रमुख उद्देश्य के रुप में स्वीकृति प्रदान करते हैं। इसी बात को पुनः विस्तार देते हुए कवि का कहना है कि उदारहृदय महात्मा का मन सम्पत्ति की प्राप्ति पर कमल के सदृश कोमल रहता है और विपदावस्था में विशाल पहाड़ की चट्टान के समान अत्यन्त कठोर हो जाता है जिससे वे सब कुछ सहजतापूर्वक सहन कर लेते हैं। [4] कवि की दृष्टि में महापुरुषों को लौकिक आभूषणों की आवश्यकता नहीं होती है। उनके व्यक्तित्वों को संवारने वाले अलंकार भी उनके अनूठे कृत्य ही होते हैं। उदाहरणतः प्रशंसनीय दानशीलता से ही उनके हाथ की शोभा होती है कंगन से नहीं, आराध्य गुरुचरणों में सश्रद्ध नत होने से शीश की शोभा होती है मुकुट से नहीं, मुख का मण्डन सत्य भाषण से होता है पानादि के चर्वण से नहीं, भुजाओं का अलंकरण पराक्रम के प्रदर्शन से होता है केयूरादि से नहीं, हृदय का शृंगार उसकी निर्मलता से होता है बहुमूल्य हार धारण करने से नहीं तथा श्रवणेन्द्रिय की साज–सज्जा शास्त्रीय ज्ञान के श्रवण से होती है कुण्डल पहनने से नहीं। [5] भाव यह है कि महापुरुष जीवन में लौकिक वस्तुओं की अपेक्षा चारित्रिक गुणों को अधिक अधिमान देते हैं। वे दानशीलता, सत्यभाषण, गुरुजननिष्ठा, हृदय की निर्मलता एवं विद्वानों के सान्निध्य में शास्त्रीय चर्चाओं के श्रवण जैसे उदात्त गुणों का विकास करते हुए ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं। भर्तृहरि ऐसे महापुरुषों को सदैव आदरणीय एवं वन्दनीय बताते हैं जो सत्संग में अभिरुची रखते हैं, दूसरों के दोषों पर दृष्टि न रखते हुए उनके गुणों से अनुराग रखते हैं, गुरुजनों के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं, ज्ञानार्जन में दत्तचित्त रहते हैं, मात्र अपनी पत्नी में ही अनुरक्त रहते है, लोकनिन्दा भीरु होते हैं, ईश्वर में जिनकी अटल भक्ति होती है, जो मनोनिग्रह में सक्षम होते हैं तथा जो दुर्जनों के संसर्ग को सदैव हेय एवं त्याज्य मानते हैं। [6] उक्त कथन के माध्यम से कवि ने ग्राह्य एवं अग्राह्य गुणों का बड़ी सुन्दरता से विवेचन किया है। जहाँ एक ओर वे सत्संग,बड़ों के आदर, ज्ञानार्जन, मनोनिग्रह एवं ईशभक्ति जैसे गुणों को ग्रहण करने योग्य बताते हैं वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपने पाठकों को परदोषदर्शन, परस्त्रीगमन एवं दुर्जनों के संसर्ग जैसे अवगुणों का परित्याग करने की अभिप्रेरणा दी है। इसी प्रकार महत्जनों के अद्भुत आचरणों को प्रतिपादित करते हुए नीतिशतक के प्रणेता का कहना है कि भौतिक उन्नति की अपेक्षा विनयशीलता जैसे गुणों के विकास में ही अपना अभ्युदय देखना, दूसरे के दोषों को उजागर न करके उनके गुणों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए अपने सौजन्य के प्रकटीकरण से लोक में प्रसिद्धि प्राप्त करना, परोपकारिता में स्वार्थ देखना तथा चौर्य, विलुण्ठन एवं हत्या जैसे जघन्य कृत्यों से नहीं अपितु परुष वाणी के प्रयोग में कुशल किसी दुरात्मा को अभयदान देकर समाज की दृष्टि में स्वयं को अपराधी ठहराना आदि ऐसे विलक्षण व्यवहार हैं जिनके बल पर वे समाज की दृष्टि में आदर का पात्र बनते हैं तथा सर्वसाधारण के लिये अभिवन्द्य हो जाते हैं। [7] प्रकारान्तर से महाकवि भर्तृहरि यह समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि व्यवहारिक जीवन में विनम्रता का आश्रय लेना ही व्यक्ति की वास्तविक उन्नति है, दूसरों के गुणों को प्रकट करना ही सबसे बड़ा सौजन्य है और इसी प्रकार दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति को भी भला बुरा कहे बिना क्षमा कर देना ही बड़प्पन है। महात्मा व्यक्ति का यह भी नैसर्गिक गुण होता है कि वह स्वतः स्फूर्त होकर दूसरों के कल्याण के लिये कटिबद्ध रहते हैं। इसके लिये उन्हें किसी बाह्य प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होती है जिस प्रकार सूर्य बिना याचना के ही कमलपुष्पों को विकसित करता है, चन्द्रमा कुमुदों को खिला देता है तथा मेघमण्डल बिना किसी प्रार्थना के वर्षा करते हैं। [8] निश्चय ही मानवीय समाज में ऐसे मनुष्य विरले ही होते हैं जो आन्तरिक प्रेरणा से समाज द्वारा ठुकराए गये निराश्रय एवं अनाथ प्राणियों को आश्रय देकर उनके कल्याण के लिये अहर्निश प्रयत्नशील रहते हैं। उक्त कथन के माध्यम से कवि ने सभी मानवों को जीवन में परमार्थशीलता को अपनाने एवं प्रचारित करने का सुन्दर सन्देश दिया है। परमार्थी जनों का चरित्र वस्तुतः अपरिमेय होता है। उसका मापन किसी भी यन्त्र से सम्भव नहीं है। अपने आत्मबल एवं परोपकारिता की अखण्ड शक्ति से वे दुष्कर से दुष्कर कार्य का भी सहजता से निर्वाह कर लेते हैं। पौराणिक सन्दर्भों से कतिपय उदाहरणों को उद्धृत करते हुए कवि का कहना है कि एक ओर भगवान् शेषनाग अपने फण पर पातालादि लोकों को धारण किये रहते हैं, दूसरी ओर कच्छपराज उन्हें अपनी पीठ पर सहर्ष थामे रहते हैं तथा पराकाष्ठा तो उस समुद्र के चरित में देखी जा सकती है जो इन दोनों को बिना किसी श्रम के निज क्रोड़ में समाए रहता हैं। [9] इसी प्रकार समुद्र के ही चारित्रिक वैशिष्ट्यों को दृष्टान्त स्वरुप उद्धृत करते हुए भर्तृहरि ने महाजनों के चरित्रों को अवर्ण्य एवं अप्रतिपादनीय कहा है। एतदनुसार उनका मानना है कि समुद्र का शरीर अत्यन्त विशाल, बलशाली तथा बड़े से बड़े भार को उठाने में सक्षम है। एक ओर तो शेषशायी विष्णु का निवास स्थान है तो दूसरी ओर उन्हीं का रिपुदल असुर समूह भी रहता हैं। इसी प्रकार एक ओर देवराज इन्द्र से भयभीत मैनाक आदि पर्वतों का समूह शरण लिये बैठा है तो दूसरी ओर संवर्तक आदि प्रलयकारी मेघों के साथ बड़वानल विराजमान है। [10] निश्चय ही विशाल से विशालतम् वस्तुओं को निष्पक्ष भाव से अपने बृहद् कलेवर में समेटते हुए समुद्र ने अद्भुत उदारता एवं अपूर्व सहनशीलता का परिचय दिया है और इसी से अभिप्रेरित होकर महान् लोग अपनी शरण में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्रश्रय देना अपना धर्म समझते हैं और सदैव इसका निर्वहण भी करते हैं। अपने दिन–प्रतिदिन के व्यवहार में सत्पुरुष जिन छोट–छोटे सूत्रों को अपने आचरण का अभिन्न अंग बनाते हैं उनकी ओर संकेत करते हुए कवि का कहना है कि लोभ छोड़ो, क्षमा धारण करो, अहंकार त्यागो, निष्पाप रहो, सत्य बोलो, सत्पुरुषों द्वारा चले गये मार्ग पर चलो, विद्वज्जनों की सेवा करो, गुरुजनों का आदर करो, शत्रुओं को भी मनाओ, नम्रता दिखलाओ तथा दुःखी प्राणियों पर दया करो [11] आदि सूत्र ऐसी कसौटियां हैं जो महामानवों की पहचान तो हैं ही साथ में ये साधारण मानव को भी महापुरुष की प्रथम पंक्ति में विराजित करने का सामर्थ्य रखती हैं–

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथा, सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम्।
मान्यान्मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय प्रश्रयं, कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत् सतां चेष्टितम्।।

अपनी अद्वितीय विद्वत्ता एवं लेखन कौशल से भर्तृहरि ने निःसन्देह भरतीय शास्त्रों के सार को उक्त छोटे–छोटे सूत्रों में पिरो कर रख दिया है। अलोभ, क्षमाशीलता, निरहंकारिता, अनघता, सत्यवादन, सत्पथानुसारित्व, विद्वत्सेवन, गुरुजननिष्ठा, विनयशीलता एवं दयाभाव आदि ऐसे गुण हैं जिनका व्यवहारिक जीवन में निर्वहण करना तो कठिन है किन्तु इस कड़वे घूँट को पीने वाला व्यक्ति अनिवार्यरुपेण मानवीयता के उच्चतम् स्तर को प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

2. धीर पुरुषों के गुण– सन्तुलित एवं सर्वसम्मत आचरण में धैर्यशीलता का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अधीर व्यक्ति अपने उतावलेपन के कारण अपने सामाजिक जीवन में न तो सही निर्णय ले पाता है और न ही उसके व्यवहार में सन्तुलन रह पाता है। नीतिशतक के कतिपय अंश मानवीय समाज में अवस्थित कुछ ऐसे धैर्यशील लोगों से भी पाठकों का परिचय करवाते हैं जो किसी भी परिस्थिति में धैर्यच्युत नहीं होते हैं। धैर्यशील कौन है? भर्तृहरि के शब्दों में जिसके हृदय का भेदन नारियों के कटाक्ष रुपी बाण नहीं कर सकते, क्रोध की ज्वाला का सन्ताप जिन्हें पीड़ित नहीं कर सकता तथा सांसारिक विषयों का आकर्षण जिन्हें अपने मोह पाश में नहीं बाँध सकता; ऐसा धैर्यवान् पुरुष तीनों लोकों पर विजय पा लेता है। [12] दूसरे शब्दों में नीतिशतककार ने समूचे मानव समाज को यही सन्देश दिया है कि अपने अमर्ष का परित्याग करते हुए सांसारिक विषय वासनाओं से दूर रहने में ही व्यक्ति का कल्याण निहित है। निश्चय ही क्रोध एवं सांसारिक विषयों को भोगने की ललक व्यक्ति के आचरण को प्रभावित करते हैं। उक्त दोनों ही स्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार में एक ऐसी छटपटाहट भर देती हैं जिसके कारण वह कार्याकार्य के विवेक से च्युत होकर ऐसी चेष्टाएं करने लगता है जो केवल स्वार्थपरायण होती हैं और परिवार एवं समाज पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। इसके विपरीत धैर्यशीलता वह अनूठा गुण है जिससे न केवल सामाजिक समरसता बनी रहती बल्कि व्यक्ति त्रिलोक विजेता बनने की अर्हता पा सकता है। धैर्यशील मानव की एक अन्य विशेषता है कि वह निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति तक निरन्तर कर्मशील रहता है। उदाहरण स्वरुप देवताओं के समुद्रमन्थन रुपी उस कृत्य को लिया जा सकता है जिसमें न तो समुद्र में प्राप्त होने वाली बहुमूल्य रत्नसम्पदा ही उन्हें सन्तुष्ट कर पाती है और न ही भयंकर विष का डर ही विचलित कर पाता है। अमृत पान किये बिना वे समुद्रमन्थन से विरत नहीं होते हैं। [13] निश्चय ही धीर पुरुष एक तो चुनौतिपूर्ण कार्य को अपने हाथ में लेते हैं और दूसरे वे अनेक प्रकार की विघ्न–बाधाओं के उपस्थित हो जाने पर भी हस्तगत कार्य को पूरा करके ही चैन लेते हैं। इसी प्रकार धैर्यशील लोगोंके चित्त की स्थिरता अतुलनीय होती है। नीतिविशारद लोग उनकी निन्दा करे या स्तुति, जीवन में धन आए या जाए तथा मृत्यु आकर आज ही अपना ग्रास बना दे अथवा युग के बीतने पर; परन्तु धीर जन किसी भी परिस्थिति में न्याय के मार्ग से विचलित नहीं होते हैं– ''न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः''। [14] तात्पर्य यह है कि धीरपुरुष को न तो निन्दा या प्रशंसा से, न धन से और न ही मृत्यु से कोई प्रयोजन होता है। वे हर अवस्था में स्वयं को स्थिर एवं सन्तुलित बनाए रखते हैं और सतत रुपेण न्यायोचित मार्ग का अनुसरण करते हुए समाज की निष्काम सेवा में संलग्न रहते हैं।

3. स्वाभिमानी पुरुष के गुण– अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का सदैव ध्यान रखने वाले तथा अपने पौरुष बल के अनुरुप कार्य करने वाले व्यक्ति को स्वाभिमानी कहा जा सकता है। भर्तृहरि ने सिंह को स्वाभिमानी जनों में अग्रगण्य माना है क्योंकि वह विषम् से विषम् परिस्थितियों में भी अपने जीवन यापन हेतु कदापि तुच्छ वृत्ति का सहारा नहीं लेता है। क्षुधाकुल होने पर, वृद्धावस्थावश जीर्ण–शीर्ण होने पर तथा कष्टापन्न एवं बलहीन होने पर भी वह गजराज के मस्तक के मांस को ही खाने की इच्छा रखता है और कभी भी तुच्छ तृण के भक्षण से अपनी क्षुधा को शान्त करने का प्रयास नहीं करता है। [15] कुत्ता भूख मिटाने के लिये अपर्याप्त निरामिष अस्थि को भोजन के रुप में प्राप्त करके सन्तुष्ट हो जाता है किन्तु शेर समीपवर्ती गीदड़ का शिकार न करके दूरस्थ गजराज को ही मारना पसन्द करता है। [16] भाव यह है कि साधारण लोग प्रतिकूल परिस्थितियों के उपस्थित होने पर जीवन में हर प्रकार के समझौते कर लेते हैं किन्तु स्वाभिमानी व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा के अनुरुप ही कार्य करते हैं। विपरीत परिस्थितियों का दंश भी स्वाभिमानी व्यक्ति को दुराचारी नहीं बना सकता। अतः निश्चितरुपेण व्यक्ति के स्वाभिमान को भी सदाचरण का महत्त्वपूर्ण घटक माना जा सकता है।

4. मनस्वियों के गुण– भर्तृहरि ने नीतिशतक के अन्तर्गत कुछ लोगों के चारित्रिक गुणों के आधार पर उन्हें मनस्वी की संज्ञा से विभूषित किया है। विचारों से उच्च एवं हृदय से उदार व्यक्ति को मनस्वी की संज्ञा दी जा सकती है और इनमें स्थितप्रज्ञ पुरुष की विशेषताएं बहुतायत में विद्यमान रहती हैं। ऐसे लोगों की विशेषताओं का चित्रांकन करते हुए कहा गया है कि मनस्वी व्यक्ति कहीं पृथ्वी पर शयन करता है तो कहीं पलंग पर सो लेता है, कहीं साग पात खाकर तृप्त हो जाता है तो कहीं धान के भात का आस्वादन भी कर लेता है, कहीं गुदड़ी पहन कर गुजर–बसर कर लेता है तो कहीं रेशमी वस्त्रों का आवरण भी ओढ़ लेता है। वह सुख या दुःख दोनों ही अवस्थाओं में समभाव रहते हुए कार्य की सिद्धि के लिये कटिबद्ध रहता है। [17] सुख–दुःख, हर्ष–शोक आदि द्वन्द्व मानवीय जीवन के अभिन्न अंग हैं। साधारण मानव इस तथ्य को न समझते हुए जीवन में मात्र सुख एवं हर्ष जैसे भावों का ही अनुभव करना चाहते हैं और दुःख एवं शोक जैसे भावों के सम्मुख आते ही वे विचलित होकर उत्साहहीन हो जाते हैं। उनके जीवन का अधिकतर कालखण्ड हताशा एवं दुराशा में ही व्यतीत हो जाता है। इस नकारात्मकता के परिहार के लिये कवि ने मननशील एवं बौद्धिक सम्पदा से समृद्ध मनस्वी जनों की मानसिकता एवं विपरीत परिस्थितियों में उनके व्यवहारिक पहलुओं को उभारते हुए सर्वसाधारण को यही उपदेश दिया है कि जीवन के उक्त अपरिहार्य द्वन्द्वों में समत्व बुद्धि का आश्रय लेकर ही व्यक्ति को जीवन पथ पर अग्रसर होना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में भी बुद्धि के इस समत्व को योग की संज्ञा दी गयी है–''समत्वं योग उच्यते''। [18] एक अन्य स्थान पर मनस्वियों के वैशिष्ट्य की ओर संकेत करते हुए भर्तृहरि का मत है कि जिस प्रकार पुष्प के गुच्छे या तो सबके मस्तक पर चढ़े रहते हैं या वन में मुरझाकर बिखर जाते है उसी प्रकार मनस्वी व्यक्ति भी या तो सामाजिक जीवन में सर्वोन्नत रहते हैं अथवा समाज से दूर वन के एकान्त में प्रभु चिन्तन में अपना जीवन समर्पित कर देते हैं। [19] तात्पर्य यह है कि बुद्धि बल से समर्थ मनस्वी व्यक्ति में अद्वितीय होने की बड़ी प्रबल ललक होती है। वह जहाँ भी रहे मानवोत्कर्ष को अर्जित करना उसका अन्तिम लक्ष्य होता है। वे प्रवृत्ति अथवा सांसारिकता के पथ पर चलते हुए अपनी बौद्धिक शक्ति से सर्वोच्च स्थान अलंकृत करते हैं और निवृत्ति अथवा संन्यास के मार्ग का अवलम्बन लेते हुए भी परम पुरुषार्थ मोक्ष की सिद्धि करके ही दम लेते हैं। उक्त विवेचना के आलोक में कहा जा सकता है कि मनस्विता भी व्यक्ति के आचरण को प्रभावित करते हुए उसे जीवन में केवल और केवल उत्कर्ष की ओर ही अग्रेषित करती है।

उपसंहार– ''आचारः परमो धर्मः'' भारतीय संस्कृति के इस महनीय उद्घोष ने सदाचरण को मानव के प्रथम धर्म के रुप में स्वीकृति प्रदान की है। इसके माध्यम से मानव मात्र को यह सन्देश दिया

गया है कि समाज के प्रत्येक स्तर पर उसके व्यवहारिक मापदण्ड सदैव मर्यादित होने चाहिए। इस सन्देश को समय–समय पर जन–जन तक पहुँचाने का कार्य विभिन्न कालखण्डों में जन्म लेने वाले मनीषि कवियों ने बखूबी निभाया है। ऐसे ही कवियों में भर्तृहरि का नाम भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उनके द्वारा विरचित आकार में लघु किन्तु तदन्तर्गत समाविष्ट वैचारिक सम्पदा की गुरुता से विशाल ग्रन्थ नीतिशतक उक्त सन्देश के संवाहक के रुप में विद्वद्वर्ग में समादृत है। अपने अनुपम वैदुष्य से भर्तृहरि ने इसमें गागर में सागर भरने का कार्य किया है और ग्रन्थ का प्रत्येक चतुष्पदी लघु श्लोक विशाल अर्थों का अभिज्ञापक है। सामाजिकों के आचार–विचार को आदर्शमय बनाने तथा प्रत्येक मानव को नैतिक जीवन की ओर प्रेरित करने की दिशा में इस लघु काय ग्रन्थ का योगदान नितान्त प्रशंसनीय है। कवि ने चरित्रसम्पन्न महामानवों के चरितों का सूक्ष्म निरीक्षण तो किया ही साथ में विविध पौराणिक सन्दर्भों एवं प्रकृति की गोद में बसे अन्य जीवों के दिन–प्रतिदिन के व्यवहारों से भी अगणित ग्राह्य गुणों को सदाचार के मानकों के रुप में लोगों के समक्ष रखा है। इन सब के आलोडन एवं मन्थन से कवि ने नवनीतरुपा जिस आचारसंहिता को प्रकाश में लाया है उसकी अनुपालना से वर्तमान में मानव समाज में व्याप्त आचारगत त्रुटियों का परिमार्जन तो होगा ही साथ में यह समाज में सद्वृत्तियों की स्थापना में भी सहायक हो सकती है।

सन्दर्भिका

1. नीतिशतक श्लोक 28
2. वही श्लोक 64
3. वही श्लोक 63
4. वही श्लोक 66
5. वही श्लोक 65,72
6. वही श्लोक 62
7. वही श्लोक 70
8. वही श्लोक 74
9. वही श्लोक 35
10. वही श्लोक 77
11. वही श्लोक 78
12. वही श्लोक 106
13. वही श्लोक 81
14. वही श्लोक 84,105
15. वही श्लोक 29
16. वही श्लोक 30
17. वही श्लोक 82
18. भगवद्गीता 2–48
19. नीतिशतक श्लोक 33